बच्चे सामाजिक और व्यवहार-सम्बन्धी आदतों को कैसे आत्मसात करते हैं

उमाशंकर पेरिओडी

मैंने 1980 में बच्चों के साथ कार्यशालाएँ करना शुरू किया। अपनी पहली स्वतंत्र कार्यशाला मैंने मंगलौर के अट्टावर नामक अर्ध-शहरी झुग्गी-बस्ती वाले क्षेत्र में की थी। तब मैं वहीं रहता था। यह एक ग्रीष्मकालीन शिविर था जिसका मुख्य विषय रचनात्मकता थी। इसमें बच्चों के लिए ललित कलाओं और थिएटर पर कार्यशाला आयोजित की गई थी। इस कार्यशाला से मैंने कई बातें सीखीं। इसके बाद मैंने अपने गाँव में बच्चों के लिए कई कार्यशालाएँ आयोजित कीं। इस तरह की कार्यशालाएँ आज भी आयोजित की जा रही हैं। अब इन्हें हमारे द्वारा प्रशिक्षित बच्चे और मेरी बेटियाँ संचालित करती हैं।

इन कार्यशालाओं में विषयों पर ध्यान केन्द्रित करने के अलावा हमने कुछ सामाजिक और व्यवहार-सम्बन्धी आदतों पर भी सचेत रूप से ज़ोर दिया है। इन आदतों को बच्चे धीरे-धीरे आत्मसात कर लेते हैं और इन्हें अमल में लाते हैं। समय के साथ ये आदतें इन कार्यशालाओं की संस्कृति का हिस्सा बन गई हैं और बच्चों ने इन्हें अपने दैनिक जीवन के व्यवहारों में अपना लिया है।

ज़िम्मेदारी और सहभागिता

इन कार्यशालाओं में हमने जिस एक बात को शुरुआत से ही अपनाया है, वह है अपनी योजना का विवरण बच्चों के साथ साझा करना और उस पर चर्चा करना। जब हम अपनी योजना साझा करते हैं, तो उनसे उनकी राय भी पूछते हैं। शुरू-शुरू में बच्चे बोलने में संकोच करते हैं। बच्चे तभी बोलते हैं जब उन्हें लगता है कि उनकी बातों को गम्भीरता से लिया जाएगा। इसके अलावा, वयस्क भी बच्चों की राय पूछने से डरते हैं क्योंकि कई बार उन्हें नहीं पता होता कि उनकी राय का करना क्या है। उदाहरण के लिए, कुछ ऐसे अवसर आए जब हमने कार्यशाला की योजना बच्चों के साथ साझा की और उन्होंने गतिविधियों के क्रम में बदलाव का सुझाव दिया। बतौर आयोजक हमने एक ख़ास तरीक़े से योजना बनाई होती है, इसलिए जब कोई बच्चा बदलाव का सुझाव देता है तो हमारी स्वाभाविक प्रतिक्रिया उसे न कहने या ख़ारिज करने की होती है। ऐसी स्थिति में वयस्क बच्चों से यह पूछ सकते हैं कि वे बदलाव क्यों चाहते हैं। कभी-कभी बच्चे कुछ अद्भुत सुझाव दे सकते हैं। वयस्कों को स्वयं को स्थिति के अनुरूप ढालने और योजनाओं को बदलने के लिए तैयार रहना चाहिए। हमने देखा कि जब हमने उनके सुझावों को स्वीकार कर लिया, तो बच्चों में तुरन्त ही कार्यशाला को लेकर ज़िम्मेदारी का भाव पैदा हो गया। वे इसे अपनी कार्यशाला मानने लगे। ऐसे में कार्यशाला का संचालन करना भी आसान हो जाता है क्योंकि बच्चे उसमें पूरे दिल से भाग लेते हैं।

पिछले कुछ सालों से हम सुबह-शाम बच्चों के साथ बैठकर चर्चा करते रहे हैं। अब चर्चा इन कार्यशालाओं का एक स्वाभाविक हिस्सा बन गई है। बच्चों को यह यक़ीन हो गया है कि हम उनकी बात सुनेंगे और उनके सुझावों पर अमल करेंगे। सब जानते हैं कि चर्चाएँ होंगी और उन्हें इसमें भाग लेना है। यह हमारी कार्यशालाओं की संस्कृति का एक हिस्सा बन गई है।

अनुशासन

एक और मुश्किल पहलू है अनुशासन। इस पर भी हमने बच्चों के साथ काम किया है। इसे भी लगातार और बार-बार करना होता है। इसलिए किसी भी कार्यशाला की शुरुआत में ही हम सब एक साथ बैठते हैं और कुछ व्यवहार-सम्बन्धी मानदण्ड तय करते हैं। इन मानदण्डों का पालन करने के लिए सभी की सहमति होती है। यह हमारा नियम है कि खुली चर्चा होगी, लेकिन एक बार जब व्यवहार के मानदण्डों पर सहमति बन जाए, तो हम सभी को उनका पालन करना होगा। और अगर किसी बदलाव की ज़रूरत हो, तो वह भी सभी के साथ एक और चर्चा के बाद ही किया जाएगा। किसी भी एक व्यक्ति को समूह द्वारा लिए गए निर्णय को बदलने का अधिकार नहीं है। इसे केवल समूह ही बदल सकता है। हमने बहुत आसान और की जा सकने वाली चीज़ों से शुरुआत की, जैसे कि कमरे के बाहर जूते-चप्पल सीधी लाइन में रखना। अब यह हमारे सभी बच्चों की आदत बन गई है। अगर कोई अपने जूते-चप्पल कहीं और छोड़ भी दे, तो कोई-न-कोई बच्चा उसे उठाकर तयशुदा स्थान पर रख देता है।

इसी तरह हमने तय किया कि अपनी जगह को साफ़ करने का काम भी हम सभी बारी-बारी से करेंगे। कार्यशाला की जगह को हर कार्यशाला के पहले व बाद में साफ़ किया जाता है।

इसमें यह सोच गहराई से समाई हुई है कि 'कोई भी जगह हमें जैसी मिली, हमें उसे उससे बेहतर बनाकर छोड़ना चाहिए।' जगह की सफ़ाई का यह काम लड़के और लड़कियाँ दोनों ही बराबरी से करते हैं। सुगमकर्ता भी सफ़ाई का काम करते हैं। वे सिर्फ़ इसका निरीक्षण नहीं करते। इससे सभी बच्चों को इस काम को करने की प्रेरणा मिली है।

संसाधनों का सावधानीपूर्वक इस्तेमाल

संसाधनों की बर्बादी न करना और उनका समझदारी से उपयोग करना भी सोच-समझकर लिया गया एक निर्णय है। हम बच्चों को यह बात लगातार याद दिलाते रहते हैं, ख़ासकर जब हम ऐसी चीज़ें बाँटते हैं जिन्हें ख़रीदा जाता है, जैसे कि रंग, क्राफ्ट पेपर, कैंची आदि। जब बच्चे सामग्री इधर-उधर फेंक देते हैं, तो हम इस ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं और उनके साथ मिलकर इसे इकट्ठा करते हैं ताकि इसे बाद में फिर से इस्तेमाल किया जा सके। इस तरह हम उन्हें दिखाते हैं कि हमें संसाधनों की क़द्र करनी चाहिए और उनका ज़िम्मेदारी से इस्तेमाल करना चाहिए। कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं जिन्हें सामूहिक रूप से इस्तेमाल करना होता है, जैसे कि कैंची। हम उन्हें दिखाते हैं कि उपयोग के बाद इसे कैसे सुरक्षित रूप से एक निश्चित स्थान पर रखा जाए ताकि जब ज़रूरत हो तो दूसरे इसे इस्तेमाल कर सकें। हम उन्हें बार-बार यह बताते हैं कि संसाधन हम सभी के लिए हैं और हमें केवल उतना ही लेना चाहिए जितने की हमें वास्तव में ज़रूरत है। बतौर सुगमकर्ता हम भी साधनों का उपयोग सोच-समझकर और ज़िम्मेदारी के साथ करते हैं। बच्चे इससे काफ़ी हद तक सीखते हैं कि हम चीज़ों का इस्तेमाल किस तरह करते हैं।

निडरता और परस्पर सहयोग की भावना

निडरता का माहौल बनाना एक मुश्किल काम है क्योंकि 6-7 साल की उम्र के होने तक बच्चों को यह सिखा दिया जाता है : "यह मत करो, वह मत करो, इसे मत छुओ, उसे मत छुओ, यह मत कहो, वह मत कहो।" इससे वे चुप हो जाते हैं और इसका उन पर बहुत नकारात्मक असर पड़ता है – वे ग़लतियाँ करने से डरने लगते हैं। ग़लती करने का डर और असफलता का डर रचनात्मकता के दो सबसे बड़े दुश्मन हैं। इसके कारण बच्चे नई चीज़ों को तलाशना, प्रयोग करना और कुछ नया करना बन्द कर देते हैं। अपनी कार्यशालाओं में हम ऐसा माहौल बनाते हैं जहाँ बच्चों को डाँटा नहीं जाता, सज़ा देना तो दूर की बात है। हम ऊँची आवाज़ में बात नहीं करते और लगातार बच्चों से कहते रहते हैं कि उन्हें भी अपनी आवाज़ ऊँची करने की ज़रूरत नहीं है। उन्हें बस ऐसे लहज़े में और इतनी ही तेज़ आवाज़ में बोलना है कि दूसरे उन्हें सुन सकें। बच्चे अपनी राय, सुझाव-विचार बिना किसी रोक-टोक के रख सकते हैं। ऐसा माहौल बनाने में हमें लगभग 5 से 6 साल लगे, लेकिन अब हम देख सकते हैं कि बच्चे खुल गए हैं और उन्हें जो कहना होता है, उसे बिना किसी डर के कहते हैं।

बच्चों के बीच झगड़ा होना स्वाभाविक है। जहाँ लड़कों में हाथापाई हो जाती है, वहीं लड़कियाँ छोटे-छोटे समूह बनाकर दूसरों से दूरी बना लेती हैं। दोनों ही व्यवहार उनके विकास के लिए नुकसानदायक होते हैं। हम प्यार और देखभाल भरा माहौल बनाना चाहते थे, लेकिन समझ नहीं पा रहे थे कि कहाँ से शुरू करें। फिर हमारी एक सुगमकर्ता ने एक अद्भुत सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि परस्पर सहयोग व मित्रता की शुरुआत हमसे ही होनी चाहिए, इसलिए हमने पूरी चेतना के साथ अच्छे और दयालु बनने की कोशिश की। साथ ही एक-दूसरे का ख़्याल रखने का प्रयास किया। लोग इन व्यवहारों को तुरन्त नहीं समझ पाते हैं। इसमें समय लगता है। हम दूसरों का सम्मान करने और प्यार करने के बारे में बच्चों से बात करते थे। यह कहना आसान था, लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि बतौर सुगमकर्ता हम बच्चों के साथ कैसा बर्ताव कर रहे थे। हम सभी बच्चों के साथ बहुत प्यार और देखभाल से पेश आते थे। मुझे लगता है कि बच्चे इस प्यार और देखभाल को महसूस कर सकते हैं और इससे उनके अन्दर भी इसी तरह की भावनाएँ पैदा होती हैं। अब हमें उन्हें याद दिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। प्यार और देखभाल बड़े बच्चों से छोटे बच्चों तक स्वाभाविक रूप से पहुँचते हैं।

किसी भी संस्कृति का निर्माण करना आसान नहीं होता है। इसके लिए उन मूल्यों या गुणों की स्पष्ट व गहन समझ ज़रूरी होती है जिन्हें आप बढ़ावा देना चाहते हैं। साथ ही यह भी ज़रूरी होता है कि आप अन्य लोगों को इनके बारे में समझाएँ। ऐसे व्यवहारों का तब तक बार-बार लगातार अभ्यास करना पड़ता है जब तक कि ये आदतें न बन जाएँ। धीरे-धीरे आदतें एक संस्कृति का रूप ले लेती हैं। एक बात जो हमें ध्यान में रखनी चाहिए वह यह है कि सिर्फ़ 'कहने' का लोगों पर कोई असर नहीं पड़ता। जो कहा जाता है उसे सुन लिया जाता है और भुला दिया जाता है, लेकिन जो किया जाता है उसे सीखा जाता है और उसका अनुसरण किया जाता है। यह भी मैंने बहुत स्पष्ट रूप से देखा है कि यदि कुछ व्यवहार केवल दूसरों को प्रभावित करने के लिए 'दिखाए' जाते हैं और हमारे स्वाभाविक आचरण का हिस्सा नहीं होते, तो लोग इस दिखावे को समझ जाते हैं और ऐसे व्यवहारों को नकार देते हैं।

इन सभी सालों के अनुभव से हमें यह समझ आया है कि किसी संस्कृति का निर्माण करना कठिन भी है और आसान भी। कठिन इसलिए है क्योंकि यह बहुत जटिल होता है और इसके लिए समय और प्रयोग की ज़रूरत होती है। आसान इसलिए है क्योंकि यदि हम उस संस्कृति को 'जीते' हैं, तो हमें और कुछ करने की ज़रूरत नहीं होती। हमें सिर्फ़ वही करना होता है जो हम बच्चों को सिखाना चाहते हैं और वे हमारा अनुसरण करेंगे। वे क्या सीखेंगे और क्या नज़रअन्दाज़ करेंगे, यह आपके हाथ में नहीं होता। लेकिन इस बात की सम्भावना ज़्यादा है कि वे आपका अनुसरण करेंगे।

उमाशंकर पेरिओडी 2003 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन से जुड़े हुए हैं और विकास के क्षेत्र में चार दशकों से काम कर रहे हैं। उन्होंने समाज कार्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है और वह दलितों, आदिवासियों और अन्य कमज़ोर वर्गों को उनके अधिकारों की माँग के लिए संगठित करने में जुटे रहे हैं। कर्नाटक स्टेट ट्रेनर्स कलेक्टिव के संस्थापक सदस्य होने के नाते उन्होंने शिक्षकों और फील्ड कार्यकर्ताओं को 'बेयरफुट रिसर्च' (Barefoot research) में प्रशिक्षित किया है। उनसे periodi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवादक : कविता तिवारी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** प्रतिका गुप्ता